LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

1/3 (श्लोक 1-11), रविवार, 04 दिसंबर 2022

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/YKhzKeJI4tU

ज्ञान सहित विज्ञान का गूढ़ अर्थ

आज मोक्षदा एकादशी के शुभ अवसर पर नवम् अध्याय(**राजविद्याराजगुह्ययोग**) के विवेचन सत्र का आरंभ, ईश्वर स्तुति, दीप प्रज्वलन एवं परम श्रद्धेय स्वामी गोविन्ददेव गिरिजी और माँ सरस्वती को नमन करते हुए किया गया। **घर-घर गीता हर कर गीता,** यह संकल्प आज साकार रूप में दिख रहा है। आज गीता जयंती को पूरे विश्व में बहुत ही धूमधाम से मनाया गया। हर घर में, कहीं प्रांगण में, कहीं पार्क में, पाठशाला में, और मंदिरों में हर जगह गीता ही गीता। आज अत्यंत ही पावन दिन है। आज गीता जयंती है तो इस गीता जी के मध्य में स्थित, एक सुंदर अनुपम अध्याय, जो एक तीर्थ क्षेत्र है, जो गुरुदेव का परम प्रिय अध्याय है, उस अध्याय की गहराई को जानने का प्रयास करेंगे। दोनों सेनाएँ आमने-सामने थी और उनके मध्य में भगवान ने रथ लाकर खड़ा किया क्योंकि अर्जुन ने कहा-

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थाप्य मेच्युते।

अर्जुन अपने सगे-संबंधियों को देखकर मोहग्रस्त हो गये। उन पर एक मनोवैज्ञानिक दबाव डाला गया था इसलिए वे अर्जुन जो इतने वीर थे जिन्होंने शिवजी से पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था, वे भी हताशा में पड़ गये।अर्जुन को हताशा से बाहर निकालने के लिये और अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर करने के लिये भगवान के मुख से जो शाश्वत ज्ञान की धारा बही है, वही है भगवद्गीता। यह अध्याय अत्यंत ही गूढ़ है। अनेक विद्वानों ने इसकी गहराई को जानने का प्रयास किया, इस पर भाष्य लिखने का प्रयास किया। ज्ञानेश्वर महाराज ने गीता जी की महती कहते हुए नौ हजार श्लोकों का जो भाष्य ज्ञानेश्वरी के रूप में लिखा, उसमें मानों उन्होंने एक रूपक हमें दिया है जिसमें माता पार्वती और भगवान शंकर का संवाद बताया गया है, जैसे पार्वती माता शंकर भगवान से नित्य पूछती हैं कि संसार में मेरे जो बालक हैं उन्हें दुःख से मुक्त करने का कोई उपाय बताइये, इसी संवाद में वे भगवान से कहतीं हैं कि, क्यों गीता ग्रंथ के इतने पुराने हो जाने के बाद भी इसका रसपान नित्य करने का मन करता है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि यह गीता ज्ञान कभी बासी नहीं होगा क्योंकि यह सृष्टि का रुप है और जिस प्रकार सृष्टि हर ऋतु में बदलती है, नूतन रूप लेती है वैसे ही गीता जी भी नित्य नूतन हैं, इसलिए इनका नित्य अनुसंधान करना, ज्ञान की गहराई में उतरने का प्रयास करना आवश्यक है, हम जैसे- जैसे गहराई में उतरेंगे हमें हमारे जीवन को निर्मल करने वाले नये रत्नों की प्राप्ति होगी जो हमारे मन के समस्त दोषों को नष्ट करेंगे।

मल निर्मोचन पुंसां जल स्नान दिने दिने।
सकृतद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम्।।

इस संसार का जो वृत्ति रुपी मैल है, जो लोगों के व्यवहार से हमारे जीवन में, हमारे अंतरंग में आ जाता है, वह गीता जल रुपी स्नान से शुद्ध हो जाता है। इस अध्याय में भगवान अर्जुन के माध्यम से हमारे सामने इस परम गुह्य ज्ञान को प्रस्तुत करने वाले हैं। ज्ञानेश्वर महाराज ने जब समाधि ली थी तब अपने सामने यही अध्याय खोल कर रखा था इस बात से पता लगता है कि यह अध्याय कितना महत्वपूर्ण है, इसका अध्ययन कितने ध्यान पूर्वक करना चाहिए और इसिलिए ज्ञानेश्वर महाराज अपने भक्तों को कहते हैं कि भगवान इस अध्याय में अत्यंत गोपनीय ज्ञान बताने वाले हैं और इस पर पूरा ध्यान दिया तो समस्त सुखों की प्राप्ति होगी, चाहे वो भौतिक सुख हो अथवा अंतरंग का सुख गुह्य शब्द का अर्थ है गोपनीय और राज शब्द का अर्थ है चमकना, अर्थात जीवन को चमकाने वाला ज्ञान।

9.1

श्रीभगवानुवाच
इदं(न्) तु ते गुह्यतमं(म्), प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं(म्) विज्ञानसहितं(म्), यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।9.1।।

श्रीभगवान् बोले -- यह अत्यन्त गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान दोष दृष्टि रहित तेरे लिये तो (मैं फिर) अच्छी तरह से कहूँगा, जिसको जानकर (तू) अशुभ से अर्थात् जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो जायगा।

विवेचन :- श्रीभगवान अर्जुन को परम गोपनीय ज्ञान विज्ञान सहित बताने जा रहे हैं। ज्ञान का अर्थ है Theory और विज्ञान का अर्थ है practical. जैसे रसगुल्ले को बनाया कैसे जाये यह ज्ञान है, परंतु रसगुल्ला क्या है यह खाने से हमें पता लगेगा और यह विज्ञान है, अर्थात अनुभूति का ज्ञान है। ज्ञान और विज्ञान, भगवान यहाँ दोनों ही ज्ञान अच्छी तरह बताने वाले हैं, जिसे जानने के बाद सारे अशुभों से मुक्ति हो जाती है।
जो हम नहीं चाहते वह अशुभ है, और जो हमारे जीवन में चाहते हैं, वह शुभ है। भगवान यह बात अर्जुन को ही इसलिए कहते हैं क्योंकि वे अनुसूय हैं। भगवान कहते हैं। हे अर्जुन - तुम कभी ईर्ष्या नहीं करते, कभी द्वेष नहीं करते, किसी का बुरा नहीं चाहते, तुम्हारी दोष दृष्टि नहीं है और तुम्हारा मन निर्मल है इसलिए मैं तुम्हें यह परम गूढ़ ज्ञान तथा अनुभूति बतलाता हूंँ, जिसे जानकर तुम संसार के सारे क्लेशों से मुक्त हो जाओगे। दोष न होते हुए किसी में दोष को देखना ऐसी दृष्टि को असूया कहते हैं। ज्ञान का अर्थ आत्मज्ञान होता है और विज्ञान का अर्थ है प्रपंच का ज्ञान या सृष्टि का ज्ञान, यह हमारी आजीविका के लिए भी करना होता है और आत्मज्ञान का अर्थ है स्वयं को जानना अर्थात स्वयं के वास्तविक स्वरूप को जानना, मेरा और परमात्मा का क्या नाता है, इसका ज्ञान। भगवद्गीता में ज्ञान को सर्वोच्च माना गया है। चतुर्थ अध्याय में भगवान कहते हैं-

न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यति।
तत्स्वयं योगसंसिद्ध कालेनात्मनि विन्दति।।

भगवान कहते हैं कि अर्जुन मैं तुम्हें ये दोनों ज्ञान बताऊँगा क्योंकि तुम अनुसूय हो। भगवान और अर्जुन के संबंध को ज्ञानेश्वर महाराज बड़े ही सुंदर शब्दों में बताते हैं- वे कहते हैं, हे अर्जुन- तुम प्रेम के पुतले हो, भक्ति तो कोई तुमसे सीखे और मित्रता निभाना भी कोई तुमसे ही सीखे। तुम भी चाहते तो मेरी सेना चुन सकते थे पर तुमनें कहा कि मेरा युद्ध मैं स्वयं लड़ लूँगा बस आप मेरे सारथी बनकर मेरा मार्ग दर्शन कीजिये और यही भगवद्गीता का आधार है। अपना युद्ध हमें खुद ही लड़ना होता है और कृष्ण हमारे सारथी होंगे। भगवद्गीता भगवान कृष्ण की वाङ्मयी मूर्ति है

जयतु-जयतु गीता वांङ्मयी कृष्ण मूर्ति।

जो हमारा विवेक जागृत करती है कि हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं। भगवान कहते हैं कि मैं तुम्हें यही गूढ़ बातें बताना चाहता हूंँ। ज्ञानेश्वर महाराज अर्जुन के लिये एक और सुंदर बात कहते हैं -

तू सुमनु शुद्ध मति, अनिंदकु अनन्यगति।

अर्जुन का मन और बुद्धि शुद्ध है, वे किसी की निंदा नही करते और उनके जैसी शरणागति एक उदाहरण है। भगवद्गीता को समझने के लिये, उस पात्रता को प्राप्त करने के लिये हमें भी अर्जुन के कुछ गुण जीवन में उतारने होंगे।

9.2

राजविद्या राजगुह्यं(म्), पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं(न्) धर्म्यं(म्), सुसुखं(ङ्) कर्तुमव्ययम्।।9.2।।

यह (विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात् समग्र रूप) सम्पूर्ण विद्याओं का राजा (और) सम्पूर्ण गोपनीयों का राजा है। यह अति पवित्र (तथा) अतिश्रेष्ठ है (और) इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यह धर्ममय है, अविनाशी है (और) करने में बहुत सुगम है अर्थात् इसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

विवेचन- भगवान ने राजविद्याराजगुह्ययोग के बारे में बताना शुरू किया। राज विद्या मतलब विद्याओं का राजा और राज गुह्य मतलब गोपनीय ज्ञान का राजा। यह जीवन को चमकाने वाली सर्वोपरि विद्या है। भगवान बताना आरंभ करते हैं। कुछ गोपनीय ज्ञान हैं किंतु ऐसे सभी ज्ञान पवित्र नहीं होते। कुछ बातें निकटवर्ती लोगों को ही बताई जाती हैं। सभी बातें सभी के लिए नहीं खोली जाती। यहां भगवान ने गुह्यतम राज विद्या का वर्णन किया है। राज का मतलब होता है चमकना। जो जीवन को निखारती है और चमकाती है और बहुत पवित्र है। यह ज्ञान कभी बासी नहीं होगा। सार पूर्वक कही गई गीता आज भी हमारे जीवन में उतना ही प्रभाव डालती हैं। यह आज भी हमारे जीवन को प्रशस्त करने का कार्य करती है, क्योंकि यह कभी बासी नहीं होती। भगवान कहते हैं, जब तक सूरज और चंद्रमा हैं, तब तक यह भगवद्गीता इसी प्रकार संसार को आलोकित करती रहेगी। यह प्रत्यक्ष अनुभूति देने वाली और नीति के मार्ग पर ले जाने वाली है। इसका फल कभी भी नष्ट नहीं होगा, यह सर्वोत्तम है। ऐसी ही गोपनीय बातें मैं तुम्हें बताने वाला हूंँ। यह सब सुनकर अर्जुन को लगा होगा कि यह विद्या अत्यंत कठिन होगी। परंतु भगवान कहते हैं कि नहीं, यह अत्यंत सुखकारक भी है परंतु कभी नष्ट नहीं होगी। ऐसी गोपनीय बातें मैं तुम्हें बताने वाला हूं। किसी भी शास्त्र की स्तुति दो प्रकार से की जाती है- एक उसकी विशेषताएं बताकर और दूसरा यह बताकर कि उसे जीवन में नहीं उतारा तो क्या होगा। इस प्रकार भगवान दूसरे दृष्टिकोण से बताते हैं।

9.3

अश्रद्दधानाः(फ्) पुरुषा, धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां(न्) निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि।।9.3।।

हे परंतप! इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार के मार्ग में लौटते रहते हैं अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

विवेचन - भगवान अर्जुन को बहुत से नामों से पुकारते हैं। कभी महाबाहो कहते हैं, कभी धनंजय कहते हैं, कभी पाण्डव कहते हैं। अभी भगवान उन्हें परंतप कह रहे हैं। भगवान कहते हैं; हे अर्जुन - तुम इतने वीर हो, कि दूसरों को ताप देते हो। लेकिन आज मुझे ताप दे रहे हो। तुमने अपना गाण्डीव धनुष रख दिया और हतोत्साहित हो गए। इतने युद्ध जीतने वाले अर्जुन की ऐसी अवस्था कैसे हो गई। भगवान उनके सारथी हैं और किस प्रकार उसकी इस अवस्था से वह उन्हें बाहर निकालते हैं। मनोबल के प्रभाव से मनुष्य जीतता है। और मनुष्य हारता है तो मनोबल के अभाव में। तभी तो कहते हैं-

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

भगवान अर्जुन के मनोबल के अभाव ग्रस्त मन में बल भर देंगे। भगवान कहते हैं; परंतु सब लोग इस पर विश्वास नहीं करते और जिनकी इन बातों पर श्रद्धा ही नहीं हैं ऐसे लोग जीवन में ऐसी बातें नहीं अपनाते हैं। जिसके कारण वह परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते.और अपने लक्ष्य की ओर भी नहीं जा पाते हैं। वे बार-बार इस मृत्यु रुपी संसार में फँसते रहते हैं, सुख-दुःखों को भोगते हैं और भगवान को प्राप्त नहीं कर सकते। यह संसार परिवर्तनशील है, आज अच्छा है, कल अशुद्ध और दुःखदाई। भगवान कहते हैं; इस संसार में तीन अवस्थाएँ हैं- जैसे भूतकाल का हमें शोक हो सकता है, वर्तमान काल में हमें मोह हो

सकता है और भविष्य काल में चिंता होती है। संसार चक्र के यह तीन प्रभाव हैं। भगवान कहते हैं कि ऐसे मनुष्य इसी में रहते हैं, इससे बाहर नहीं निकलना चाहते क्योंकि उनमें श्रद्धा नहीं हैं। केवल बुद्धि से, तर्क से बातें नहीं समझी जाती, इसके लिए श्रद्धा आवश्यक है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

श्रद्धा के बिना हम ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। परंतु अब श्रद्धा के साथ हमारे देश में एक और शब्द आ गया है अंधश्रद्धा। परंतु हमें श्रद्धा ही रखनी चाहिए। जिस प्रकार वैज्ञानिकों ने विज्ञान के सिद्धांत प्रतिपादित किये तो हम उन पर श्रद्धा रखते हुए उन्हें मानते हैं वैसे ही हमारे ऋषि-मुनियों ने भी अपने आध्यात्मिक प्रयोगशाला में यह सारा सत्य अपनी बुद्धि में ग्रहण किया हैंऔर हमारे लिए ग्रंथों के माध्यम से हमारे सामने खोल कर रख दिया। उस पर श्रद्धा नहीं रखेंगे तो आगे नहीं सीख पायेंगे। ऐसे लोगों को भगवान प्राप्त नहीं होते। तो फिर भगवान कहाँ मिलेंगे? जंगल में या किसी कंदरा में, पर ऐसा नहीं है क्योंकि अर्जुन तो स्वयं सब छोड़कर जंगल में जाना चाहते थे पर भगवान अर्जुन को अपना कर्तव्य छोड़कर जाने ही नहीं देते हैं। भगवान को प्राप्त करने के लिए हमें कहीं भी नहीं जाना पड़ता है, वह तो सर्व व्यापक हैं और सभी जगह पर हैं। हम परमात्मा को सगुण मूर्ति में देखते हैं, यह हमारी श्रद्धा है, परंतु केवल वहीं है यह मानना अज्ञानता है, क्योंकि वे सब जगह हैं।

9.4

मया ततमिदं(म्) सर्वं(ञ्), जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं(न्) तेष्ववस्थितः।।9.4।।

यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझ में स्थित हैं; परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा (वे) प्राणी (भी) मुझ में स्थित नहीं हैं - मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग (सामर्थ्य) को देख ! सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और प्राणियों का धारण, भरण-पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है। (9.4-9.5)

विवेचन :- इस श्लोक में श्रीभगवान अपने और इस जगत के स्वरूप के बारे में बता रहे हैं। श्रीभगवान कहते हैं, मुझ निर्गुण और निराकार परमात्मा में सारा जगत व्याप्त है। जिनका निर्माण होता है वे भूत हैं और हम पंचमहाभूतों से मिलकर बने हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु। जितने भी चर-अचर प्राणी इस सृष्टि में हैं, जितने मनुष्य हैं, जितने पक्षी है, यह सारे भूत हैं। यह मेरे आधार पर ही स्थित हैं। परमात्मा द्वारा ही सारा जगत व्याप्त है। कण-कण में परमात्मा है, परमात्मा सब जगह है पर हम उन्हें मूर्ति में देखते हैं अथवा मंदिर में देखते हैं। जैसे हवा है पर हमें दिखती नहीं है। उसके लिए हमें पंखा चलाना पड़ता है। पंखा हवा का निर्माण नहीं करता, वो वहाँ पहले से ही है, उसी प्रक्रिया से परमात्मा सब जगह है पर हम उन्हें मूर्ति या मंदिर में देखते हैं। यह प्रार्थना और उपासना की प्रक्रिया है। भगवान कहते हैं, सारे भूत मुझ में ही उपस्थित है, पर मैं उन सब में नहीं हूंँ। मैं कण-कण में हूँ, सब मुझ में है लेकिन मैं उन सब में नहीं हूंँ। यह भगवान के तीन वाक्य हैं।

जगत शब्द के तीन अर्थ हैं-

ज - जायति
ग- गच्छाति
त- तिष्ठति अर्थात यह थोड़ी देर तक टिका हुआ है ऐसा हमें लगता है और ऐसे जगत को परमात्मा ने व्याप्त किया है।

एक उदाहरण से इसे समझ सकते हैं-

जैसे सोने के आभूषण बनाए जाते हैं, उसमें सोना है। सोने के बिना अलंकार का कोई आधार नहीं है। सोने के बिना अलंकारों का निर्माण नहीं होगा परंतु अलंकारों के अतिरिक्त भी सोना है। अलंकारों का आधार सोना है, सोने का आधार अलंकार नहीं है। उसी प्रकार परमात्मा से सबकी उत्पत्ति होती है, लेकिन परमात्मा उनमें नहीं होते हैं। जगत का आधार तो परमात्मा है, परंतु

परमात्मा का आधार जगत नहीं है। परमात्मा इस संसार के परे भी है। शंकराचार्य जी भगवान कहते हैं कि हे भगवान! मैं आपका हूँ परंतु आप केवल मेरे नहीं बल्कि सबके हैं। जिस प्रकार लहर सागर की होती है, लेकिन समुद्र उस लहर का नहीं होता। बहुत सारी लहरें उस समुद्र में होती हैं, इसलिए लहर का अस्तित्व समुद्र पर निर्भर है लेकिन समुद्र का अस्तित्व लहर पर निर्भर नहीं है। उसी प्रकार यह संसार परमात्मा पर लहरों के समान निर्भर है। परमात्मा इस संसार से परे भी है। मिट्टी के घड़ो में पानी है जिसमें सूरज का प्रतिबिंब दिखाई देता है और पानी बाहर उड़ेल दिया तो प्रतिबिंब नष्ट होगा, सूरज नहीं, वैसे ही इस जगत के नष्ट होने से परमात्मा नष्ट नहीं होंगे क्योंकि वे इस जगत में प्रतिबिंब रूप में स्थित हैं।

9.5

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः।।9.5।।

विवेचन - भगवान कहते हैं, कि मैं कण-कण में विराजित हूंँ और अव्यक्त मूर्ति के रूप में मैंने सारा जगत व्याप्त किया है। सूक्ष्म रूप में, सारे भूत मात्र मुझ में हैं और मेरे आधार पर संसार टिका हुआ है, लेकिन मैं उनमें नहीं हूंँ। अब यह दूसरा दृष्टिकोण भगवान बताते हैं। हम परमात्मा के आधार से इस संसार में हैं। एक परमात्मा ही अनेक रूपों में इस सृष्टि में विराजित है। सबमें एक ही चेतना शक्ति है। भगवान कहते हैं, भूत है ही कहाँ?

ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन: |
मन:षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति || 7||

जो भूत हैं वे सब मेरे ही अंश हैं।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो।

मैं भूतों को धारण करने वाला, भूतों को उत्पन्न करने वाला होकर भी भूतों के अंदर नहीं हूँ। जैसे लहरें तो है ही नहीं, क्योंकि वह तो सागर में ही विलीन हो जाती हैं। वैसे ही मैं भी प्रतिबिंब के रूप में हूंँ। जैसे सिनेमा में हम चलचित्र देखते हैं तो केवल चित्र देखते हैं पर्दा नहीं देखते, उसी प्रकार इस जीवन के पर्दे पर भी चलचित्र चल रहा है, भूत मात्र की उत्पत्ति हो रही है, वे लहरों के समान विलीन हो रहे हैं पर इस चलचित्र को चलाने वाला वह परमात्मा पर्दे की तरह ही अदृश्य है और हमें नजर नहीं आता। वह पर्दा ही उस चलचित्र के लिये आधार है जिसके बिना दृश्य नहीं दिखेगा, परंतु दृश्य नहीं चल रहा हो तब भी वह पर्दा तो रहता ही है। परमात्मा संसार में हैं पर यह मानकर हम इस परिवर्तनशील संसार को पकड़े रहेंगे तो परमात्मा नहीं मिलेंगे। ज्ञानेश्वर महाराज इसका एक उदाहरण बताते हैं कि जैसे पानी पर झाग आता है परंतु उसमें पानी नहीं है, तो क्या हम उस झाग से अपनी प्यास बुझा सकते हैं? नहीं, हमें उसके लिए पानी ही पीना पड़ेगा। इसी प्रकार सृष्टि परमात्मा में हो सकती है पर सृष्टि में परमात्मा सीमित नहीं हो सकते हैं।
इसीलिए उन्हें अनंत कोटि ब्रह्माण्ड कहा गया है।

9.6

यथाकाशस्थितो नित्यं(म्), वायुः(स्) सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानीत्युपधारय।।9.6।।

जैसे सब जगह विचरने वाली महान् वायु नित्य ही आकाश में स्थित रहती है, ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी मुझमें ही स्थित रहते हैं - ऐसा तुम मान लो।

विवेचन - जिस प्रकार वायु का निर्माण होता है, लेकिन वायु एक जगह पर नहीं रहती है। सब जगह उसका संचार होता है और वह गगन में फैल जाती है। इसी प्रकार यह सारे भूत मात्र मुझ में ही हैं। परंतु जहां वायु नहीं है, वहां भी आकाश तो है और

आकाश पर इस प्रकार से कोई प्रभाव नहीं होता। आकाश में कभी बादल आते हैं, बादल गरजते हैं, कभी काले बादल आते हैं, कभी बारिश बनके बरसते हैं, और कभी इंद्रधनुष दिखता है। यह सब आकाश में होता है, लेकिन आकाश पर उसका कोई भी परिणाम नहीं होता। उसी प्रकार परमात्मा भी भूत मात्रों में हैं परन्तु उस पर भी इनका कोई परिणाम नहीं होता। यह विचित्र तथा विशाल लगने वाली भौतिक सृष्टि पूरी तरह से भगवान के नियंत्रण में है।

9.7

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं(म्) यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि, कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।9.7।।

हे कुन्तीनन्दन ! कल्पों का क्षय होने पर (महाप्रलय के समय) सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं (और) कल्पों के आदि में (महासर्ग के समय) मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

विवेचन - परमात्मा सब जगह है, उनका प्रमाण प्राप्त करने के लिए हमें कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं है। हम अपने अंदर भी परमात्मा की अनुभूति कर सकते हैं, लेकिन भगवान कहते हैं, कि तुम्हें कुछ ऐसे रहस्यों को भी जानना पड़ेगा। भगवान कहते हैं - हे अर्जुन किस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति होती है यह भी जानना पड़ेगा। कल्प के अंत में सारी सृष्टि मुझ में व्याप्त हो जाती है और फिर मैं उसकी दोबारा रचना करता हूँ, उसे फिर से उत्पन्न करता हूंँ । कल्प के अंत में अव्यक्त में प्रकृति लीन हो जाती है और कल्प के आरंभ में अव्यक्त से फिर मैं उसका निर्माण करता हूँ। जैसे ग्रीष्म काल में घास नहीं होती है, और वर्षा काल में फिर से हरी भरी हो जाती हैं। इस प्रकार से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। कल्प क्या है? यह काल की विस्तृत गणना है। कल्प एक महायुग होता है। जिसे हम चतुर्युग कहते हैं। पहले सतयुग आता है, फिर त्रेता युग, फिर द्वापर युग और फिर आता है कलयुग। अभी कलयुग चल रहा है। इनकी काल गणना कैसी है-

चार लाख बत्तीस हजार वर्षों का कलयुग है, आठ लाख चौसठ हजार वर्षों का द्वापर युग है, बारह लाख छियानवें वर्षों का त्रेता युग है और सतयुग सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्षों का है, इस प्रकार एक चतुर्युग तियालीस लाख बीस हजार वर्षों का है।

चतुर्युग जब हजार बार घूमता है तो ब्रह्मा जी का एक दिन होता है। जब चतुर्युगी फिर हजार बार घूमती है तो ब्रह्मा जी की रात होती है। ब्रह्मा जी के दिन में सृष्टि का आरंभ होता है और रात में ब्रह्मांड में विलीन हो जाएगी। कल्प के प्रारंभ में ब्रह्मा जी उठते हैं तब सृष्टि का फिर से निर्माण हो जाता है। ऐसे इस ब्रह्मांड की आयु सौ साल की होती है। यह काल की विस्तृत महिमा है। जब हम रात को सोते हैं तो हमारी सृष्टि भी हमारे साथ सो जाती है, रात को हम सब भूल जाते हैं। सुबह उठकर फिर हमारी सृष्टि का निर्माण होता है।

9.8

प्रकृतिं(म्) स्वामवष्टभ्य, विसृजामि पुनः(फ्) पुनः।
भूतग्राममिमं(ङ्) कृत्स्नम्, अवशं(म्) प्रकृतेर्वशात्।।9.8।।

प्रकृति के वश में होने से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय की (कल्पों के आदि में) मैं अपनी प्रकृति को वश में करके बार-बार रचना करता हूँ।

विवेचन - श्रीभगवान कहते हैं; हे अर्जुन! अपनी प्रकृति को स्वीकार करके, स्वभाव के बल से परतंत्र हुए इस पूर्ण भूत समुदाय को, बार-बार उनके कर्मों के अनुसार मैं पुन:-पुन: उत्पन्न करता हूंँ। जैसे हमने कर्म किए थे, वैसा हमारा स्वभाव हो जाता है और जैसा स्वभाव हुआ, उसी के गुणों के हिसाब से भगवान हमें रचते हैं। सारी दुनिया ब्रह्मांड की सृष्टि के साथ ही उत्पन्न होती है। भगवान कहते हैं जब मैं अवतार लेकर आता हूंँ तो प्रकृति इसका अंगीकार करती है। मैं प्रकृति के नियंत्रण में नहीं रहता हूंँ। भगवान कहते हैं यह सारी सृष्टि अपने कर्मों के बंधन में बंधी है, गुणों के बंधन में बंधी है। भूत समुदाय भी इसी में फंसा है किंतु मैं नहीं फंसा हूंँ।

9.9

न च मां(न्) तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनम्, असक्तं(न्) तेषु कर्मसु।।9.9।।

हे धनञ्जय ! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मों में अनासक्त और उदासीन की तरह रहते हुए मुझे वे कर्म नहीं बाँधते।

विवेचन -भगवान कहते हैं, मैं कर्म में आसक्त नहीं हूँ इसलिए वह कर्म मुझे बंधन में नहीं डालते हैं। कर्म और उसके फल के बंधन में हम अटक जाते हैं। कर्म के दो बंधन हैं-
कभी-कभी कर्म ही हमें बंधन लगता है, जैसे कोई हमारे घर में बीमार है, हमें उसकी सेवा करनी पड़ती है और उसके लिए हमें समय बिताना पड़ता है, तो वही हमें बंधन लगता है। कई बार कर्तव्य कर्म भी हमें बंधन लगते हैं। एक विद्यार्थी को दोस्तों से मिलना अच्छा लगता है, टीवी में मैच देखना अच्छा लगता है और उसे अपनी पढ़ाई करना बंधन लगता है। उसे लगता है कि मुझे अब पढ़ाई करनी पड़ेगी, यही बंधन है। अभी अर्जुन को भी अपना कर्म बंधन लग रहा है, क्योंकि वह क्षत्रिय है। युद्ध करना उसका कर्त्तव्य है। और यह कर्त्तव्य उसे अभी बंधन लग रहा है। हमें लगता है सारे कर्त्तव्यों ने हमें बांँध रखा है। इस प्रकार के कर्मों में फंँसे हुए कर्म ही बंधन है। भगवान कहते हैं, मुझे कर्म बंधन में नहीं डालता। कर्म के तीन बंधन होते हैं- एक होता है कर्तृत्व अर्थात मैंने किया, अहंकार की भावना, दूसरा होता है भोक्तृत्व, इसका फल मैं भोगूंगा और तीसरा है कर्मासक्ति, मैं वही कर्म करूँगा जो मुझे अच्छा लगता है। जब हम किसी काम को छोड़ते हैं तब हमें पता चलता है कि बंधन क्या होता है। भगवान कहते हैं कि यह बंधन मुझे नहीं बांधते क्योंकि मैं उदासीन रहता हूंँ, उदासीन का अर्थ यहाँ उदास रहने से नहीं है, भगवान ने मंद-मंद मुस्काते हुए यह उपदेश देना आरंभ किया था। गुरुदेव कहते हैं कि विष्णु जीवात्मा को प्रसन्न करने वाला ग्रंथ है भगवद्गीता। उदासीन का अर्थ है उत् - आसीन अर्थात ऊपर से, दूर से देखना, हम जितना दूर से देखना प्रारंभ करेंगे, हमारी समस्याएं उतनी ही छोटी दिखेंगी। भगवान का तो पूरा जीवन ही कर्त्तव्यनिष्ठा का उदाहरण है। उन्होंने छोटे-बड़े का भेद किये बिना अपने संपूर्ण कर्मों को पूरी निष्ठा से किया, जो कर्म सौंपा गया वह पूरी रुचि के साथ करना और बिना भविष्य की चिंता किये वर्तमान में रहना, यह जीवन जीने की एक सुंदर कला है।

9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः(स्), सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते।।9.10।।

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। हे कुन्तीनन्दन ! इसी हेतु से जगत का (विविध प्रकार से) परिवर्तन होता है।

विवेचन :- भगवान कहते हैं कि मैंने कर्म किया, ऐसा कहने से हम कर्म के बंधन में बंध जाते हैं। कर्म करने के बाद यह सोचें कि वह कर्म परमात्मा ने मुझसे करवाया या परमात्मा को अर्पण किया और उससे मुक्त हो गए, तो कर्म हमें बंधन में नहीं डाल सकता। उसके फल हमें नहीं भुगतने पड़ेंगे। जिस प्रकार किसी ने कोई अपराध किया तो यह सिद्ध करना पड़ेगा, कि यह कर्म उसने किया है, उसके बाद ही उसे सजा भुगतनी पड़ती है। कर्म की आसक्ति गई तो कर्म बंधन में नहीं डाल सकता और इसलिए भगवान अर्जुन से कहते हैं; मेरी अध्यक्षता में यह सारी प्रकृति, यह भगवान की शक्ति, यह सृष्टि, सब जड़ और चेतन की उत्पत्ति करती है। और इसी कारण यह संसार चक्र घूमता रहता है। हमें लगता है हम स्थिर हैं परंतु हम तो स्वयं की प्रदक्षिणा लगा रहे हैं और पृथ्वी के साथ सूरज की प्रदक्षिणा लगा रहे हैं, सारे ग्रह गोल घूम रहे हैं। सूरज भगवान की परिक्रमा कर रहे हैं और सूरज भगवान परमात्मा की परिक्रमा लगा रहे हैं। इस प्रकार यह सारा जगत वेग से घूम रहा है, और यह सब परमात्मा की अध्यक्षता में हो रहा है। जिस प्रकार अलग-अलग यंत्र कार्य करते हैं परंतु उनकी शक्ति एक ही होती है, उसी प्रकार प्रकृति परमात्मा की शक्ति से उनकी अध्यक्षता में कार्य करती है। हर समय अध्यक्ष का होनाआवश्यक होता है। लेकिन अर्जुन! लोग समझते ही नहीं है, वे आत्मा को नहीं समझते हैं। उन्हें मूर्ति में सीमित रखते हैं। निर्गुण को मानने वाले सगुण को नहीं मानते और सगुण को मानने वाले निर्गुण को नहीं मानते, परंतु परमात्मा सगुण भी है और निर्गुण भी है। उनकी वास्तविकता न जानने के कारण और ज्ञान न होने के कारण मनुष्य परमात्मा को कम जानते हैं, उन्हें कम आंकते हैं।

9.11

अवजानन्ति मां(म्) मूढा, मानुषीं(न्) तनुमाश्रितम्।
परं(म्) भावमजानन्तो, मम भूतमहेश्वरम्।।9.11।।

मूर्ख लोग मेरे सम्पूर्ण प्राणियों के महान् ईश्वररूप श्रेष्ठ भाव को न जानते हुए मुझे मनुष्य शरीर के आश्रित मानकर अर्थात् साधारण मनुष्य मानकर (मेरी) अवज्ञा करते हैं।

विवेचन - भगवान कहते हैं; ज्ञान की तो फिर भी सीमा है, लेकिन अज्ञान की नहीं। ऐसे अनगिनत अज्ञानी है जो भगवान को नहीं मानते हैं। कुछ लोग प्रकृति को मानते हैं परंतु परमात्मा को नहीं मानते, उन्हें नहीं समझते। प्रकृति के चलने के अपने कुछ नियम हैं तो उसे चलाने वाला कोई नियामक तो होगा ही। यहांँ कृष्ण का मतलब अर्जुन के सारथी या देवकीनंदन नहीं, बल्कि वह परमात्मा हैं जिसमें सारी दुनिया व्याप्त है। श्रीभगवान कहते हैं; मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ़ लोग, मनुष्य का शरीर धारण करने के कारण मुझे कुछ नहीं समझते हैं अर्थात अपनी योग माया से संसार के उद्धार के लिए मनुष्य रूप मे अवतार लेने के कारण, मुझ परमेश्वर को साधारण मनुष्य मानते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज ऐसे लोगों के बारे में कहते हैं- वे क्रिया न करने वाले को कर्म में बांधते हैं, जो विदेह है उन्हें देही मानते हैं, वर्ण नहीं है पर वर्ण मानते हैं, जैसे क्षत्रिय अथवा वैश्य हैं, चरण नहीं पर उनके चरण की कल्पना करते हैं, हाथ नहीं पर हाथों की और नेत्र नहीं पर नेत्रों की कल्पना करते हैं, भगवान की कुण्डलियाँ बनाते हैं। सगुण को मानते हैं तो उसी में बंध जाते हैं फिर निर्गुण को नहीं मानते और निर्गुण को मानते हैं तो फिर सगुण को नहीं मानते और इस तरह समग्रता से उस परमात्मा को नहीं जानते, जो भगवान को मानने वाले होते हैं, ऐसे लोग भगवान के प्रिय होते हैं। अब यहांँ ज्ञान की बात समाप्त होती हैं और आगे भगवान भक्ति की बात कहते हैं और उसके बाद भगवान कर्म की बात भी करते हैं। इस अध्याय में ज्ञानयोग, कर्मयोग, और भक्तियोग, इन तीनों का सुंदर मिलाप होता है, संगम होता है। यह अद्‌भुत अध्याय अंततोगत्वा एक सुंदर सिद्धांत है।

इस प्रकार नवम् अध्याय का विवेचन सत्र यहाँ समाप्त हुआ।

इसके बाद प्रश्नोत्तर सत्र आरंभ हुआ-

प्रश्नकर्ता :- अथर्व जी

प्रश्न:- श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को पार्थ क्यों कहते हैं, उनको उन्हीं के नाम से क्यों नहीं पुकारा जाता?

उत्तर :- उनके अलग-अलग नाम हैं। जैसे हमसे कोई प्यार करता है, वह हमें किसी भी नाम से बुला सकता है वैसे ही, पार्थ अर्थात पृथा का पुत्र। पृथा कुंती माता का नाम है।

प्रश्न कर्ता :- अथर्व जी

प्रश्न :- गीता का नाम गीता कैसे पड़ा। कोई कारण है क्या?

उत्तर ;- गीता का अर्थ है गीत, जिसे गाया जाता है उसे गीत कहते हैं और यह भगवान के मुख से प्रकट हुआ गीत है, अर्थात भक्ति से गाया हुआ गीत है और यदि हमारे जीवन में भी यह गीत बज जाए, तो यह हमारे जीवन में भी बहुत आनंद देगा। इसलिए इसे कहते हैं गीत और गीता।

प्रश्न कर्ता :- अथर्व जी

प्रश्न :- गीता में इन योगों के मतलब क्या है। सब के अलग-अलग नाम है, तो इनका मतलब क्या है?

उत्तर :- योग शब्द का अर्थ है जुड़ना, जिसके द्वारा हम भगवान से जुड़ते हैं। जैसे,अर्जुन रोया तो उनका विषाद भी योग बन गया। कभी-कभी हमें दुःख होता है, तो दुःख के कारण भी हम परमात्मा से जुड़ जाते हैं, उन्हें पुकारते हैं, उनकी याद करते हैं, उनसे दुःख से छुड़ाने की प्रार्थना करते हैं। पर अर्जुन स्वयं के लिए नहीं रोया, अर्जुन अपने परिवार जन के लिए रोया, अपने राज्य के लिए रोया, इसका क्या होगा। हम लोग अगर भारत माता के लिए रोते हैं कि भारत माता का क्या होगा, तो हमारा यह विषाद भी कभी-कभी विषाद योग बन जाता है और यह परमात्मा के साथ हमें जोड़ता है।

प्रश्न कर्ता :- सुधा रामा दीदी

प्रश्न :- देवासुरसम्पद्विभागयोग योग में जो आसुरीयोनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि .....श्लोक में भगवान जो बोलते हैं तो मेरा एक प्रश्न है कि भगवान सबका उद्धार तो करेंगे ना, वे तो करुणामयी है तो ऐसे क्यों बोलते हैं ?

उत्तर :- इस प्रश्न में हमें यह देखना है कि भगवान इतने कठोर शब्दों में क्यों बोल रहे हैं, भगवान कहते हैं कि मैं यहां पर उपलब्ध हूंँ। भगवान कहते हैं कि यह सब सृष्टि के नियम के अनुसार हो रहा है। ईश्वर को परजन्य के समान समझना चाहिए। जो बोएंगे उसी प्रकार की फसल आएगी। भगवान यहाँ कहते हैं कि जो सुनते नहीं हैं, और अपने जीवन को नहीं सुधारना चाहते हैं और तीनों लोकों के द्वंद में फंस कर भी सुधरना नहीं चाहते वे परमात्मा को प्राप्त नहीं कर पाते और बार-बार इस आसुरी योनि में जन्म लेते रहते हैं। वे इससे बाहर नहीं निकलना चाहते। वे परमात्मा को पुकारते ही नहीं हैं।

इन्ही प्रश्न-उत्तरों के साथ आज का विवेचन सत्र समाप्त हुआ

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||